पंचम अध्याय

आलोच्य नाटकों में चित्रित भाषाशिल्प का अनुशीलन

पंचम अध्याय

आलोच्य नाटकों में चित्रित भाषाशिल्प का अनुशीलन

5.1 भाषा का स्वरूप :-

भाषा का नाटक की आंतरिक संरचना और बाह्य स्थितियों से संबंध होता है। लेखक अपनी भाषा में अपने भावों और विचारों को पाठकों के सामने रखता है। बिना भाषा के किसी साहित्यिक कृति की कल्पना नहीं की जा सकती। डॉ. प्रतापनारायण टंडन के मतानुसार -

''मानव के पास भावों को व्यक्त करने का सर्वाधिक सबल माध्यम भाषा ही है। जो साहित्यकार भाषा पर अधिकार रखते हुए उसे केवल साधन हीं नहीं साध्य भी मानकर चलता है; वही प्रभावी अभिव्यक्ति के द्वारा किसी विशिष्ट कृति में अपने पाठकों को बाँधे रखकर प्रभावित एवं आप्लावित भी कर सकता है। नाटककार की मूल एवं वांछित संवेदनाओं को स्पष्ट अभिव्यंजित कर पाने में समर्थ भाषा को ही सफल कहा जा सकता है।''[1] अत: जीवन संदर्भों के अनुसार भाषा भी यथार्थ होनी चाहिए।

नाटक की भाषा अन्य साहित्यिक विधाओं की तुलना में कुछ अलग संस्कारों से युक्त होने को बाध्य है। यथार्थ के आग्रह के कारण उसका सामान्य जीवन और बोलचाल के निकट होना अनिवार्य होता है ; सामान्य भाषा के भीतर से ही वह अपने को संरचित- संस्कारित भी करती है और इस रूप में नाट्य वस्तु के लिए तथ्य ही नहीं जुटाती वरन् सम्पूर्ण रचना तन्त्र का निर्माण भी करती है। इसलिए नाट्य भाषा केवल सामान्य भाषा बनकर नहीं रह जाती। वह अपनी नाटकीयता के कारण यथार्थ का भ्रम मात्र पैदा करती है। नाट्यभाषा मंच पर संवाद के रूप में बोलने के लिए लिखीजाती है। डॉ. गोविन्द चातक के मतानुसार ''नाट्यभाषा का महत्त्व उसके दृश्यत्व और दृश्य के साथ जुड़े होने में है। वस्तुत: उसमें 'देखा' जाता है, वह 'सुने' जा रहे का ही रुपान्तर है।

इसलिए नाटक की भाषा केवल संप्रेषण नहीं होती, प्रकार्यमूलक भी होती है। यह शब्द में 'सोचना और कार्य करना' जैसा अनुभव देती है।

5.2 शिल्प का अर्थ :-

'दिनमान हिन्दी शब्दकोश' में शिल्प का अर्थ है - 'हाथ की कारीगरी।' 'नालंदा विशाल शब्दसागर' में शिल्प का अर्थ इस प्रकार दिया है - 'कारीगरी,कोई वस्तु हाथ से बनाकर तैयार करने का काम।' उसी प्रकार 'हिन्दी शब्दसागर : भाग 9' में शिल्प का अर्थ इस तरह दिया है - 'कौशल, चातुर्य, निर्माण, सर्जन, सृष्टि, रचना, आकार, आवृत्ति, अनुष्ठान, क्रिया।' राजस्थानी हिन्दी शब्दकोश में शिल्प का अर्थ है - 'कला, कारीगरी, कलापूर्ण वस्तु, साहित्यिक कृति।'

5.3 शिल्प की परिभाषा (शिल्प से तात्पर्य) :-

शिल्प-विधि अंग्रेजी के 'टेक्नीक' शब्द का हिन्दी रूपांतर है। हिन्दी साहित्य में शिल्पविधि के लिए रचनातन्त्र, रचना-विधान, रचना पध्दति, शिल्प-विधान आदि शब्द प्रयुक्त होते हैं।

शिल्प के सम्बन्ध में डॉ. रामजन्य शर्मा ने लिखा है - 'शिल्प वह माध्यम है जिससे नाटककार अपनी मूर्त-अमूर्त भावनाओं को प्रेक्षक के समक्ष प्रस्तुत करता है। वस्तुतः यह अंग्रेजी के 'टेक्नीक' शब्द का पर्याय है। नाटककार का जो कथ्य है वह वस्तु है और उस कथ्य की अभिव्यक्ति का माध्यम शिल्प है।''[3]

डॉ. शान्ति मलिक ने शिल्पविधि के बारे में लिखा है कि - ''कहीं से घटना, कहीं से विचार वस्तु और कहीं से पात्र चुनकर उन्हें समन्वय और तारतम्य में बैठाकर सामाजिक जीवन के यथार्थ को मनुष्य के रक्त से बने हुए जीवन के उस यथार्थ को प्रस्तुत कर अपने लक्ष्य की पूर्ति में सफल होता है। वह विभिन्न अनिवार्य उपकरणों को एकत्रित कर जो विधान उपस्थित करता है

वही उसकी शिल्पविधि है।"[4] अर्थात आत्मानुभूति की उचित अभिव्यक्ति के लिए रचनाकार को अन्योन्य मौलिक शिल्प-विधियों का सहारा लेना पड़ा।

मेरी दृष्टि से जब भावों और अनुभूतियों की प्रेरणा नाटककार के मन में निर्माण हो जाती है, तो वह उनकी प्रभावपूर्ण अभिव्यंजना में संलग्न होता है। अर्थात नाटककार किसी-न-किसी रूप में अपनी उन अमूर्त भावनाओं को मूर्त रूप देने की कोशिश करता है। वह अपनी अलग-अलग अनुभूतियों को दर्शकों के सामने प्रकट करने की सहज प्रवृत्ति रखता है। वह अपनी अनुभूति को, अभिव्यक्तियों नयी-नयी शैलियों में भरकर अधिक-से-अधिक रोचक बनाने की कोशिश करता है, उसे शिल्प कहते हैं। शिल्पकार के पास जिस प्रकार की कारीगरी होती है, उसी प्रकार नाटककार भी अपनी नाट्यकला द्वारा नाटक को रूपायित करने की कोशिश करता है, वही शिल्प होता है।

5.4 शिल्प का महत्त्व :-

साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटक में शिल्प का महत्त्व अधिक है। पद्य और गद्य में जो अनेक साहित्य रूप है वे विभिन्न भाषाओं में रचे जाते हैं। उनमें सबसे अधिक माँग करनेवाला नाटक है। नाटक में शिल्प की महत्ता के कई कारण है - नाटक यह दृश्य काव्य है। नाटककार को हमेशा इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि उसकी कृति में केवल उसी वस्तु का आयोजन हो जिसका प्रदर्शन हो सके। चूँकि नाटक प्रदर्शन का उद्देश मनोरंजन के साथ-साथ जनमानस को जागृत करना है। अत: नाटककार को दर्शकों की बोध शक्ति का भी ध्यान रखना पड़ता है जिसके कारण अपनी कृति दर्शकों पर प्रभाव उत्पन्न कर सकें। रंगमंच भी नाटक की एक सीमा है। नाटककार को रंगमंच के सीमित स्थान को ध्यान में रखकर सबकुछ प्रस्तुत करना पड़ता है। जिसके कारण अपनी कृति दर्शकों पर प्रभाव उत्पन्न कर सकें। रंगमंच भी नाटक की एक सीमा है। नाटककार को रंगमंच के सीमित स्थान को ध्यान में रखकर सबकुछ प्रस्तुत करना पड़ता है।

नाटककार को नाटक की अवधि का भी ध्यान रखना पड़ता है। नाटक निश्चित समय में ही अभिनीत हो सके। इसलिए नाटककार को समय के बारे में सतर्क रहना आवश्यक है। नाटककार अपनी रचना के लिए कथा को समाज, पुराण, विज्ञान तथा कुरीतियों पर व्यंग्यात्मक कथासूत्र से चुनता है। पात्रों का चयन भी उसी क्षेत्र से करके उनमें भावों को भर देता है, जिसके कारण बेजान दिखायीं देनेवाले पात्र सजीव हो जाते हैं। नाटक में संवादों का संक्षिप्त, चुस्त, चुटीले और प्रभावोत्पादक होना कृति को श्रेष्ठ बना देता है। नाटक में देशकाल वातावरण का भी असाधारण महत्त्व है। भाषाशैली के बिना नाटक निर्जीवसा लगता है। साथ ही नाटक का उद्‌देश महान और मंगलदायक होना चाहिए।

5.5 शिल्प का स्वरूप :-

नाट्यविधा के स्थूल रूप से दो पक्ष होते हैं - भावपक्ष और कलापक्ष। भावपक्ष का सम्बन्ध नाटककार की जीवनानुभूति और भावसौंदर्य से है, जिसमें उसकी वैयक्तिक अनुभूतियाँ और विचारधाराएँ अभिव्यक्ति द्‌वारा कल्पना के आधार पर मूर्त रूप देने की चेष्टा करता है, वही नाटक का शिल्प है।

शिल्प के माध्यम से किसी कला या रचना को सौंदर्यपूर्ण या उत्कृष्ट बनाया जाता है और कला को किसी मूर्त रूप में बांधा जाता है। लेखक को कलाकार की अनुभूति और उद्‌देश को कलात्मक अभिव्यक्ति में बदलने के ढंग को शिल्प कहना पड़ेगा। साहित्यकार अपनी रचना की कथावस्तु में बिखरी हुई घटनाओं और क्रियाकलापों को किसी अनुबंध में बाँधने का जो प्रयास करता है, वही उसका शिल्प है। इसी शिल्प द्‌वारा उसकी रचना का यथार्थ सम्बन्धी बोध नित्य नवीन, परिवर्तित और विकसनशील होता है।

साहित्यकार या कलाकार की आत्माभिव्यक्ति शिल्प के माध्यम से ही हो सकती है क्योंकि रचनाकार का हर नया अनुभव तभी मूर्त रूप ग्रहण करता है, जब शिल्प साधन के रूप में

ग्रहण किया जाता है। इसीलिए शिल्प साधन और साध्य है। कलाकार या रचनाकार के भाव जगत की अभिव्यक्ति, उसकी अनुभूतियों का रूप है। साहित्य की कोई भी विधा क्यों न हो; उसका सृजन शिल्प-रहित नहीं हो सकता। साहित्य विधा में शिल्प की किसी भी तरह उपेक्षा नहीं की जा सकती।

रचनाकार शिल्प के माध्यम से ही युगबोध का परिचय देता है क्योंकि रचनाकार एक सामाजिक प्राणी है। इस प्रकार सामाजिक जीवन में परिवर्तन आना संभव है। उसी के साथ ही शिल्प का स्वरूप भी परिवर्तित होता रहता है। जिस प्रकार साहित्य के परिवर्तन की प्रक्रिया समाप्त नहीं होती,ठिक उसी प्रकार शिल्प का अस्तित्व कभी समाप्त नहीं होता। शिल्प द्वारा ही पाठक को प्रबन्ध काव्य, महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक, गीत, आख्यान, नाटक, कहानी, उपन्यास और एकांकी के अंतर का आभास होता है। अन्तर्गत और बहिर्गत सन्तुलन स्थापन करने के लिए रचना में शिल्प का नियोजन किया जाता है। शिल्प द्वारा ही कलाकार या रचनाकार की अनुभूतियों और विचारों को स्पष्ट आकार मिलता है। इसीलिए रचना के लिए शिल्प एक अनिवार्य और महत्त्वपूर्ण कारक है। अच्छा वही माना जाता है; जो समयानुकूल वस्तु और परिप्रेक्ष्य में उचित पध्दति से प्रस्तुत हो सका है।

शिल्प में कल्पना का भी महत्त्व रहता है क्योंकि कोई भी प्रतिभाशाली साहित्यकार जब किसी रचना का सृजन करता है और अपनी कल्पना के अनुकूल ही किसी विशिष्ट शिल्प का प्रयोग करता है।

5.6 भाषा-शिल्प से तात्पर्य :-

भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा है। रचनाकार भाषा द्वारा ही अपने भावों को सशक्तता, गंभीरता, अनुरूपता और चित्रांकन करने का सामर्थ्य किसी कृति को सप्राणता एवं सजीवता प्रदान करने में पूर्णरूपेण सहायक होती है। भाषा मानव जीवन को प्रस्तुत करती है।

भाषा भी मूलत: मानव समाज की ही रचना है। अत: किसी भी विधा की रचना को प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत करने में उसमें प्रयुक्त भाषा का भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। भाषा का संबंध भाषागत रूपरचना से है, जबकि शिल्प का संबंध किसी वस्तु की समग्र रूप रचना से होता है। भाषा-शिल्प से किसी कला या रचना को उत्कृष्ट बनाया जाता है। साहित्यकार किसी प्रकार की शब्दयोजना करता है, किस प्रकार के वाक्यांशों का निर्माण करता है ? तथा उसकी रचना से किस प्रकार की ध्वनि उत्पन्न होती है? ये सारी बातें भाषा-शिल्प के अंतर्गत समाहित होती हैं।

5.7 नाटक में भाषा-शिल्प का महत्त्व :-

नाटक में कथोपकथन को अनिवार्य माना जाता है। इस कथोपकथन का एकमात्र माध्यम है 'भाषा'। संवाद का अनिवार्य माध्यम स्पष्ट भाषा है। नाटककार के लिए अभिव्यक्ति के समस्त उपकरणों में से भाषा ही सर्वाधिक सजीव माध्यम है। देशकाल को साकार करने में भी भाषा एक प्रभावकारी माध्यम है। अत: जिस देश एवं काल का प्रभाव नाटक में प्रस्तुत हो उसी के अनुरूप भाषा का प्रयोग भी नाटककार को करना चाहिए। तभी वह कृति को स्वाभाविक एवं प्रभावशील रूप में उपस्थित कर सकेगा। भाषायी संरचना विषय को विशेष कोन, विशेष अर्थ या विशेष भंगिमा प्रदान करती है।

भाषा जितनी सशक्त, सही, सरल, सुबोध तथा चेतन होगी, उतनी शाश्वतता और सामाजिकता की वाहक होगी। मुहावरों, लोकोक्तियों, अलंकारों, बिम्बों एवं प्रतिकों का प्रयोग भाषा को प्रभावात्मकता एवं चमत्कारिकता प्रदान करने में सहायक होता है। अत: आवश्यकतानुरूप नाटककार को उपर्युक्त गुणों से युक्त भाषा का प्रयोग करना पड़ता है। इन सबके साथ-साथ भाषा का संप्रेषणीय होना भी अत्यंत आवश्यक है। अत्यंत क्लिष्ट भाषा प्रयोग दर्शकों के भावानुप्रवेश को आघात पहुँचाता है। अत: नाटक की भाषा सहज, सरल, स्वाभाविक तथा संप्रेषणीय और ओज, माधुर्य एवं प्रसाद गुणों से युक्त होना अत्यंत आवश्यक है।

5.8 विवेच्य नाटकों में भाषा-शिल्प :-

नाटककार को अपने भाव एवं विचारों को व्यक्त करने के लिए सरस और सरल भाषा का प्रयोग करना चाहिए। भाषा का प्रयोग युगीन समाज के दृष्टिकोन से हो तो अधिक श्रेयस्कर होता है। परन्तु उसमें सरलता का होना आवश्यक है।

भाषा के अंतर्गत शब्द प्रयोग के विभिन्न रूप, भाषा सौंदर्य के साधन, मुहावरों, कहावतों, वाक्य, सूक्तियाँ आदि रूपों का अध्ययन आवश्यक है। इसका हम संक्षेप में विवेचन करेंगे-

5.8.1 विभिन्न भाषाओं के शब्दों का प्रयोग :-

मिश्रजी का भाषा पर असाधारण अधिकार है। मिश्रजी के नाटकों में शब्द के विविध रूप प्रयुक्त हुए हैं। वे विषयानुकूल भाषा का प्रयोग करते हैं। उन्होंने ऐसी भाषा का प्रयोग किया है; जिसमें अरबी, फारसी तथा उर्दू शब्दों के साथ-साथ अंग्रेजी शब्दों का भी संमिश्रण है। नाटककार की भाषा पात्रानुकूल, सूक्ष्म, सांकेतिक और पैनेपन से युक्त है। उनकी भाषा के भण्डार में अरबी तथा उर्दू के लोकप्रचलित शब्द भी बहुत बड़ी संख्या में मिलते हैं। साथ ही देशी-विदेशी स्रोतों से विविध प्रकार के शब्दों का प्रयोग हुआ है।

5.8.1.1 संस्कृत शब्द -

मिश्रजी संस्कृत के विद्वान थे। इसी कारण उनकी भाषा में संस्कृत के शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक ढंग से हुआ है। मिश्रजी के नाटकों में मानव जीवन की विविधता तथा मनुष्य की विविध प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती है। पात्रों की स्थिति के अनुसार भाषा का प्रयोग ही नाटककार की विशेषता रही है। उन्होंने सहज स्वाभाविकता के साथ पात्रानुकूल शब्दों का प्रयोग किया है, जिसमें भावों की पूर्ण अभिव्यक्ति और बोधगम्यता मिलती है। मिश्रजी के 'सिन्दूर की होली' और 'संन्यासी' नाटक में प्रयुक्त कुछ संस्कृत शब्द यहाँ प्रस्तुत है -

'सिन्दूर की होली' के संस्कृत शब्द -

'बरसात', 'पहर', 'इलायची', 'राजी', 'राय', 'टहलने', 'जूता', 'कलेजे', 'अनिच्छापूर्वक', 'थाने', 'तिलक', 'आँगन', 'संसार', 'खैर', 'हाथ-पैर', 'कातर', 'भतीजे', 'छेदकर', 'चोट', 'रतनार', 'पत्थर', 'आवेश', 'ईश्वर', 'चक्कर', 'उपवास', 'आड', 'दुबला', 'लट', 'अमूल्य', 'आग', 'निष्ठुर', 'कमल', 'गंगा', 'बालू', 'अभागिनी', 'सन्देह', 'चन्द्रमा', 'परिहास', 'कलम', 'उँगलिया', 'बिस्तर', 'गम्भीर', 'परीक्षा', 'वेतन', 'पतन', 'अनुचित', 'ऐश्वर्य', 'अन्धा', 'दारूण', 'उद्वेग', 'धोती', 'स्वास्थ', 'परिहास', 'बाँह', 'जाँघ', 'भिक्षुकों', 'ज्वालामुखी', 'व्यभिचार', 'निरंतर', 'तूलिका', 'ग्रीष्म', 'अनुताप', 'सांघतिक', 'जीवन', 'रोग', 'श्वेत', 'मूँछ', 'आहत', 'पत्र', 'अग्नि', 'हलाहल', 'मृतक', 'साँस', 'क्षोभ', 'अवहेलना', 'पुरुषत्व', 'नीरस', 'तान', 'अँधेरे', 'कलाई', 'पीड़ा', 'भावुक', 'आघात', 'क्षुब्ध', 'पैर', 'आँखें', 'लूक', 'परिपाटी', 'आदिम', 'विकार', 'एकान्त', 'सहानुभूति', 'कंधे', 'साहस', 'वैधव्य', 'आन्दोलन', 'चक्कर', 'दूत', 'मृत्यूंजय', 'तपस्या', 'श्लोक', 'चिन्ता', 'निर्वाह', 'उन्माद', 'शास्त्र', 'तलवों', 'स्वाँग', 'ज्वर', 'लाठी', 'हाथ', 'भाँग', 'प्रायश्चित', 'नीरस', 'शिक्षा', 'कलंक'।[5]

'संन्यासी' नाटक के संस्कृत शब्द -

'कोट', 'कापी', 'स्वीकार', 'धूर्त', 'निमंत्रण', 'नेपथ्य', 'करवट', 'प्रकृति', 'पृथ्वी', 'रजनी', 'कारागृह', 'अध्यात्मिक', 'व्दव्द', 'वेदान्त', 'कोमल', 'परिधि', 'बिजली', 'अभिसार', 'व्याकुल', 'तल्लीन', 'तृप्ति', 'वेग', 'उल्कापात', 'मिथ्या', 'हत्या', 'प्रस्थान', 'परीक्षा', 'प्रलोभन', 'व्रत', 'दुर्बल', 'नियत', 'शपथ', 'उपासना', 'विरक्ति', 'लोहा', 'अपराध', 'प्यास', 'पारितोषिक', 'अंगूठा', 'अंचल', 'काँटा', 'गेंदे', 'कदंब', 'व्यभिचार', 'कायर', 'नारीत्व', 'तनिक', 'उदार', 'बला', 'चमार', 'धन्यवाद', 'सनक', 'सूअर',

'विवश', 'साड़ी', 'स्वाधीन', 'केकय', 'वशि', 'प्रलयंकर', 'अंजलि', 'कलम', 'तपस्या', 'प्रेम', 'स्वर्ग', 'वासना', 'सदाचार', 'धरती', 'अवहेलना', 'पीठ', 'कोड़ा', 'पुलिस', 'काबुल', 'घी', 'उधेड़', 'नैतिक', 'अन्तर्यामी', 'लाश', 'मट्ठी', 'निष्ठुर', 'प्रतिहिंसा', 'धोखा', 'प्रतिद्वन्दी', 'पोत', 'आग', 'पानी', 'आत्महत्या', 'गौरव', 'नाटकीय', 'केले', 'अतीत', 'सतीत्व', 'देवता'।[6]

हिंदी भाषा की जननी होने के कारण भाषा को सहज प्रवाहित करनेवाले उपर्युक्त शब्द हिंदी में घुल मिल गए हैं। हिंदी में संस्कृत शब्दों की संख्या काफी हैं, ऐसे शब्दों के परिणामस्वरूप नाटक की भाषा जनजीवन की भाषा बन जाती है। नाटककार ने इसका प्रयोग बड़े सहज ढंग से किया है, जिनसे कही भी दुर्बोधता उत्पन्न नहीं होती। इसके प्रयोग से भाषा में सहज प्रवाह दिखायी देता है।

5.8.1.2 अरबी शब्द -

मिश्रजी के नाटकों में अरबी शब्दों का कई बार प्रयोग हुआ है। उनके नाटकों में अरबी शब्द इस प्रकार है -

'सिन्दूर की होली' नाटक में अरबी शब्द -

'जिल्द', 'दफ्ती', 'मुकदमे', 'करीब', 'इलाका', 'रोब', 'सुलह', 'शुबहा', 'कमीज', 'इन्तजाम', 'हाकिमों', 'इज्जत', 'साफा', 'हिस्सेदार', 'हुकूमत', 'बिल्कुल', 'अदालत', 'मुसम्मातवाला', 'वारिस', 'मौका', 'नाहक', 'तबीअत', 'शैतान', 'अदालत', 'तकलीफ', 'औरत', 'वालिद', 'एतबार', 'सबूत', 'फर्श', 'कानून', 'कलम', 'मरीजों', 'बिदा', 'लकवा', 'मौत', 'नक्शे', 'तलाक', 'मद्द', 'शैतान', 'खौफनाक', 'हालत', 'वक्त', 'फौरन', 'मुआवजा', 'कयामत', 'गुलामी', 'मौका', 'सवाल', 'मुमकीन', 'हैरान', 'सबूत'।[7]

'संन्यासी' नाटक में अरबी शब्द -

'कुर्सी', 'अखबारी', 'हाजिरी', 'हाल', 'दिमाग', 'हैरान', 'लिफाफा', 'खाँसी', 'शीशे', 'रूमाल', 'बिलकुल', 'सितार', 'तमीज', 'मकान', 'दर्जे', 'गलती', 'मुल्क', 'तमाशा', 'तकलीफ', 'शान', 'हैरानी', 'तजवीज', 'खिलाफ', 'कलम', 'हिरासत', 'मुलाजिम', 'जमायत', 'मुल्क', 'कौम', 'मुनासिब', 'हज्ज', 'आशिक', 'शहीद', 'माशूकों', 'एतबार', 'जमावड़े', 'तसवीर', 'उसूल', 'इन्कार', 'लायक', 'कफ', 'शैतान', 'तसल्ली', 'रभजान', 'गजब', 'इज्जत', 'तस्वीर', 'खुराफात', 'तकलीफ'।[8]

5.8.1.3 फारसी शब्द -

मिश्रजी ने फारसी शब्दों का प्रयोग कई बार किया है। उनके नाटकों में फारसी शब्द इस प्रकार है -

'सिन्दूर की होली' नाटक में फारसी शब्द -

'मेज', 'तश्तरी', 'मेहराबदार', 'गोसवारा', 'बदकिस्मत', 'पाजामा', 'खूब', 'गोसवार', 'रूमाल', 'बिरादरी', 'जेब', 'तनख्वाह', 'रिश्तेदारी', 'शीशम', 'दस्तावेज', 'चालाकी', 'आवारा', 'कानूनगो', 'नाहक', 'बेईमान', 'एकाएक', 'बदमाश', 'गिरफ्तार', 'शायद', 'आस्तीन', 'अफसोस', 'शादी', 'हर्गिज', 'तह', 'बिस्तर', 'बदमाश', 'चादर', 'दवा', 'तकिया', 'बरदाश्त', 'बीमारी', 'चिराग', 'बयान', 'निशान', 'दीवाल'।[9]

'संन्यासी' नाटक में फारसी शब्द -

'चपरासी', 'लाश', 'रास्ता', 'बदनामी', 'पर्दा', 'बीमारी', 'सैर', 'गर्मी', 'तश्तरी', 'रूख', 'रंज', 'खुशामदी', 'शीशा', 'बादशाह', 'बेहूदा', 'खून', 'रोशनी', 'बेवकूफ', 'परवाह', 'बदनाम', 'बेजोड़', 'परेशानी', 'निशान', 'तनख्वाह', 'खुफिया',

'दुमजिले', 'खुशनुमा', 'दिलेर', 'परेशानी', 'उम्मीद', 'शाइस्ता', 'दस्तखत', 'अफसोस', 'जुर्माना', 'खून', 'बेहया', 'नाकाम', 'मस्ती', 'जिन्दगी', 'नेकनामी', 'बदनामी', 'नशीली'।[10]

निष्कर्ष यह कि मिश्रजी ने अपने नाटकों में जगह-जगह अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग किया है।

5.8.1.4 अंगरेजी शब्द -

विवेच्य नाटकों में मिश्रजी ने अंगरेजी शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है। प्रस्तुत नाटक की घटनाएँ शहर में घटित होने के कारण और भारतीय जनजीवन में अंगरेजी शब्दों का प्रचलन अधिक मात्रा में होने के कारण पात्रों के यथार्थ जीवन को प्रकट करने के लिए अंगरेजी शब्दों का प्रयोग उचित ही है।

'सिन्दूर की होली' नाटक में अंगरेजी शब्द -

'गोल्डफ्लेक', 'विलायत', 'हाईकोर्ट', 'ऑनरेरी', 'मैंजिस्ट्रेट', 'सूटकेस', 'सिल्क'।[11]

'संन्यासी' नाटक में अंगरेजी शब्द -

'क्लास', 'परसेन्टेज', 'डिग्री', 'स्टेशन', 'स्विच', 'प्रेस', 'ड्रायव्हर', 'पोस्टमैन', 'रिमार्क', 'रिगरस इम्प्रिजनमेंन्ट', 'सीरियस', 'आउट ब्रेक्स', 'अरेस्टेड', 'कम ऐटवन्स', 'नम्बर', 'लिस्ट', 'सोशल सैन्कशन', 'वाइस चान्सलर', 'मिसेज', 'एजेन्ट', 'सिण्डिकेट', 'व्हेन लाइफ', 'मेटाफिजिक्स', 'ऑफिस', 'टेबल', 'वाइसराय', 'टेलीफोन', 'लेक्चर', 'वेस्ट पेपर', 'वेटिंगरुम', 'सी.आई.डी. इन्स्पेक्टर', 'सिविल सर्जन', 'पोस्ट मार्टेम', 'रोमाण्टिक', 'कलेक्टर'।[12]

इस प्रकार मिश्रजी ने अपने नाटकों में कई स्थानों पर अंगरेजी शब्द एवं वाक्य आदि का प्रयोग किया है। किन्तु ऐसे कुछ शब्द चरित्रों को प्रकट करने में सक्षम बन पड़े हैं। इस प्रकार मिश्रजी ने अंगरेजी शब्दों का प्रयोग भाषा में सहजता और स्वाभाविकता लाने के लिए किया है।

5.8.1.5 देशज शब्द -

विवच्य नाटकों में कहीं-कहीं देशज शब्द भी प्रयुक्त दिखाई देते हैं।

'सिन्दूर की होली' में 'देशज' शब्द -

'दियासलाई', 'दीवाल', 'आलमारियाँ', 'चौडी मुहरी', 'आँचर', 'खिलवाड़', 'गाँव', 'परवाह', 'बिछावन', 'चुपचाप', 'गरमी', 'रूक्ष', 'समुद्र', 'पूर्णमासी', 'अनुकम्पा', 'शरत', 'पैताने', 'करवट', 'आत्मा', 'चमडा', 'धीरज', 'नींव', 'निर्दय', 'शुबहा', 'गर्दन'।[13]

'संन्यासी' नाटक में 'देशज' शब्द -

'जँगला', 'पतलून', 'लेख', 'दाहिने', 'चौंककर', 'घण्टा', 'परसाल', 'आसमान', 'वैध', 'दवा', 'चुपचाप', 'कन्धे', 'शाम', 'जूता', 'चारपाई', 'करवट', 'अधखुली', 'अनर्थ', 'ज्वर', 'दहेज', 'पलंग', 'तमाशा', 'मकान', 'थियेटर', 'सिनेमा', 'पींजडे', 'सपने', 'लय', 'आग', 'परिधि', 'असीम', 'कसम', 'आँच', 'भौंह', 'तलवार', 'म्यान', 'धार', 'बगीचा', 'पत्थर', 'अड़चन', 'पेड़', 'मुँह', 'पागल', 'आलमारी', 'कड़वी', 'तिल्ली', 'सनक', 'सितार', 'पगली', 'ईर्ष्या', 'मसाला', 'पहाड़', 'आँगन', 'आत्मा', 'मुहर', 'पौधे', 'इस्तीफा', 'सिपाही', 'फेफड़ा', 'न्योछावर', 'पिस्तौल', 'प्यास'।[14]

5.8.1.6 'विदेशी' शब्द -

'सिन्दूर की होली' नाटक के विदेशी शब्द -

'कानून', 'खौफनाक'।[15]

'संन्यासी' नाटक के विदेशी शब्द -

'रजनी', 'कठिन', 'वियोग', 'अपराध'।[16]

5.8.1.7 'तुर्की' शब्द -

'सिन्दूर की होली' नाटक के तुर्की शब्द -

'कुरता'।[17]

'संन्यासी' नाटक के तुर्की शब्द -

'कुरते', 'दरोगा'।[18]

5.8.1.8 अनुकरण बोधात्मक शब्द -

'सिन्दूर की होली' नाटक के शब्द -

'सहलाने', 'झंझट'।[19]

'संन्यासी' नाटक के शब्द -

'झमेले', 'थरथर'।[20]

5.8.1.9 'उर्दू' शब्द -

'सिन्दूर की होली' नाटक के उर्दू शब्द -

'अदालत', 'मुमकीन', 'तनख्वाह'।[21]

5.8.1.10 अन्य शब्द -

भाषा में सहज स्वाभाविकता, सुन्दरता तथा अनुकूलता लाने की दृष्टि से नाटककार ने अन्य अनेक प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है। जिसके कारण भाषा प्रभावपूर्ण एवं प्रवाहपूर्ण बन पड़ी है।

5.8.1.11 ध्वन्यार्थक शब्द -

भाषा में सहजता लाने के लिए तथा वातावरण की यथार्थ स्थिति का चित्रण करने के लिए ध्वन्यार्थक शब्दों का प्रयोग इस प्रकार हुआ है - जैसे 'मशीन का खटर-पटर'।[22] जिससे भाषा में सहजता तथा वातावरण की यथार्थ स्थिति का चित्रण आया है।

5.8.1.12 द्विरुक्त शब्द -

भाषा के सौंदर्य में अभिवृद्धि लाने के लिए द्विरुक्त शब्दों का प्रयोग किया जाता है। किन्तु इनकी ज्यादती से भाषा प्रवाह में बाधा भी पहुँच सकती है। नाटककार ने ऐसे शब्दों का प्रयोग भाषा को सहज, प्रवाहपूर्ण और स्वाभाविक बनाने के लिए किया हुआ प्रतीत होता है। कुछ शब्द द्रष्टव्य है -

'सिन्दूर की होली' नाटक में द्विरुक्त शब्द -

'बारी-बारी', 'तनिक-तनिक', 'जल्दी-जल्दी', 'कभी-कभी', 'रहते-रहते', 'अलग-अलग', 'बैठे-बैठे', 'अभी-अभी', 'बड़े-बड़े', 'लम्बे-लम्बे', 'धीरे-धीरे', 'अरे-अरे', 'और-और', 'बार-बार'।[23]

'संन्यासी' नाटक में द्विरुक्त शब्द -

'साथ-साथ', 'पास-पास', 'दूर-दूर', 'थर-थर', 'सिसक-सिसक', 'धीरे-धीरे', 'कभी-कभी', 'छन-छन', 'नयी-नयी', 'बार-बार', 'चार-चार', 'कहीं-कहीं', 'पानी-पानी', 'एक-एक', 'जल्दी-जल्दी', 'बात-बात'।[24] जिससे भाषा में प्रवाहपूर्णता एवं सहजता आ गई है।

5.8.1.13 अपशब्द -

साहित्य में अपशब्दों का प्रयोग अवांछित होता है; किन्तु कभी-कभी भाषा को पात्रानुकूल बनाने के लिए इन शब्दों का प्रयोग आवश्यक प्रतीत होता है। विशिष्ट सामाजिक

परिस्थिति में यथार्थता का आभास दिलाने के लिए, परिस्थितियों के प्रति आक्रोश प्रकट करने के लिए, तो कही पात्रों की मनोवृत्ति को उजागर करने के लिए इन शब्दों का प्रयोग दिखायी देता है। विवेच्य नाटकों में अपशब्दों का प्रयोग कहीं-कहीं मिलता है। 'बेईमान', 'नाहक', 'सैतान', 'हरामखोर' जैसे शब्दों का प्रयोग असंगत नहीं बल्कि योग्य ही लगता है। जिसके कारण भाषा में तेज धार आ जाती है। इनका प्रयोग चरित्र के अनुकूल ही प्रतित होता है।

5.8.2 भाषा सौंदर्य के साधन -

किसी भी रचना की सार्थकता उसमें व्यक्त विचार और भावों को सहज, सुन्दर और आकर्षक ढंग से अभिव्यक्त करने में होती है। नाटककार अपनी अभिव्यक्ति को सुन्दर और आकर्षक बनाने के लिए भाषा के विभिन्न उपकरणों का प्रयोग करते आये हैं। आलंकारिक भाषा तथा सहज स्वाभाविक पात्रानुकूल भाषा, व्यंग्यपूर्ण भाषा, मुहावरे-कहावतें तथा सुक्तियों आदि भाषा में सौंदर्य लाते हैं। मिश्रजी के नाटकों में कुछ प्रमुख उपकरण सार्थकता के साथ प्रयुक्त हुए हैं -

5.8.2.1 अलंकारिक भाषा -

नाटककार ने अपनी अभिव्यक्ति को अधिक आकर्षक बनाने के लिए अलंकारिक भाषा का प्रयोग किया हुआ दिखाई देता है। इसमें उपमा, अनुप्रास, रूपक आदि अलंकारों के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति को सार्थकता प्रदान की है। विशेषण का प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा में है।

1. विशेषण -

नये - नये विशेषणों का अविष्कार करने से शब्दों को नयी अर्थवत्ता प्राप्त होती है। 'मिश्रजी ने अपने विवेच्य नाटकों में विशेषणों का सुंदर ढंग से प्रयोग इस प्रकार किया है - 'भयानक रात', 'भयानक प्रकृति', 'भयंकर हत्याकांड', 'तेज आँधी' आदि अनेक विशेषणों का प्रयोग मिश्रजी ने अपने विवेच्य नाटकों में किया है।

2. रुपक अलंकार -

नाटककार ने कुछ स्थानों पर रूपकों का भी सहारा लिया है। जिससे नाटक की भाषा सशक्त जान पड़ती हैं। कुछ रूपक दृष्टव्य है। जैसे - ''पिताजी साँप की तरह फुफकार छोड़ रहे हैं।'' ''उसका हँसना तो जैसे एक साथ जुही के असंख्य फूलों का बरस पड़ना था।''[25]

3. मुहावरे से युक्त भाषा -

भाषा को सजीव और प्रभावशाली बनाने के लिए तथा भाषा में मार्मिकता लाने के लिए मुहावरों का भी प्रयोग किया है। मुहावरों को भाषा में एक महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। मुहावरें ही हर भाषा की जान है। मिश्रजी ने नाटकों में मुहावरेंका प्रयोग ज्यादा मात्रा में नहीं मिलता। लेकिन कुछ स्थानों पर मुहावरे का प्रयोग अवश्य देखने को मिलता है। जैसे -

'सिन्दूर की होली' नाटक में मुहावरें -

'शुबहा करना', 'बेहोश हो जाना', 'उमड़ जाना' आदि कई मुहावरों का प्रयोग इन नाटकों में किया हैं।[26]

'संन्यासी' नाटक में मुहावरें -

चौंकना, रूष्ट होना, पानी पानी कर देना, इस प्रकार के कई मुहावरों का प्रयोग विवेच्य नाटक में किया है।[27]

निष्कर्ष यह कि मिश्रजी ने अपनी भाषा को अधिकाधिक प्रभावशाली बनाने के लिए मुहावरें एवं चुभते हुए वाक्यों से सुसज्जित किया है। यही कारण है कि मिश्रजी की भाषा स्वतंत्र चिंतन एवं स्वतंत्र विचारों से परिपूर्ण है। उन्होंने मुहावरोंद्वारा अपनी भाषा को अत्याधिक लाक्षणिक, मार्मिक एवं अर्थव्यंजक बनाने का प्रयास किया है। उन्होंने अपने नाटकों में इनका.प्रयोग अधिक न कर प्रसंगवश एवं आवश्यकतानुसार किया है।

5.8.4 वाक्य-विन्यास -

कथ्य की नवीनता का सार्थक संप्रेषण करने के लिए रचनाकारों ने नये शब्दों की सृष्टि ही नहीं की, बल्कि नयी वाक्य परंपरा का भी निर्माण किया। नये-नये वाक्य प्रयोग होने लगे। प्राचीन वाक्य-विन्यास नये भावबोध के अनुरूप अर्थवहन करने में असमर्थ हो गये। वाक्य-विन्यास में नवीनता लाने के लिए पात्रों की मानसिक स्थितियों के अनुरूप अधूरे और अपूर्ण वाक्यों का सहारा लिया गया। परिणामस्वरुप नये-नये वाक्यों का प्रचलन आधुनिक युग में मिलता है। विवेच्य नाटकों में वाक्य-विन्यास का सुन्दर प्रयोग हुआ है। जैसे -

5.8.4.1 अन्त में कर्तावाले शब्द -

"तो आज चलोगी तुम भी ...."

"तुम समझ नहीं सकते मेरी तकलीफ को।"

5.8.4.2 अनिश्चित क्रमवाले वाक्य -

"मैं नहीं तुम या हम दोनों ।"

"सरकारी अस्पताल की हालत तुम जानती हो, कैसा प्रबन्ध रहता है .... रोशनी का, और - और चीजों का।"

5.8.4.3 पात्रों की परिस्थिति, मानसिक उद्वेलन के अनुसार अधूरे वाक्य -

"ओह ! मालूम हो जायगा .... जल्दी क्या है। जिसके लिए ...."

"मेरा विवाह जो हुआ है ....."

"नहीं, कल तो हमें लखनऊ जाना है ..... अभी बात हुई है, उसी की। (उठते हुए) अच्छा तो अब ...."

"हाँ, सुन चुकी हूँ .... उनकी तैयारी हो चुकी। अब मैं भी तैयार हो जाऊँ ...."

5.8.4.4 टूटे बिखरे तथा छोटे वाक्य -

"माहिर ने कहा था ... (कुछ सोचकर) उसका विवाह हो चुका है न ?"

"बस .... कहना मत फिर ।"

"अच्छा जात हई .... मों आदमी नां हों ... भला दुनिया में के केकर ... आपन आपन .... गीत न सुने।"

"अपील .... तो हो सकती है।"

इसप्रकार ने अनेक वाक्यों का प्रयोग मिश्रजी ने किया है।

5.8.4.5 क्रियाविहीन वाक्य -

"गोरा और स्वस्थ शरीर, आँखें छोटी, लेकिन चमकती हुई और घने काले बाल, जो पीछे की ओर घूम पड़े हैं। दाढी मूँछ बनी हुई, कमीज, चौड़ी मुहरी का पाजामा और पंजाबी जूता। इस प्रकार मिश्रजी ने ऐसे अनेक वाक्यों का प्रयोग अपने नाटकों में किया है।

5.8 दार्शनिकता से युक्त भाषा :-

विचारों के अनुरूप परिवर्तन का उदाहरण भी उनके नाटकों में कुछ पात्रों की भाषा में देखा जा सकता है। चंद्रकला,मनोरमा, मनोज, मुरलीधर इन पात्रों की भाषा दार्शनिकता से युक्त है। विवेच्य नाटकों में दार्शनिकता से युक्त उदाहरण काफी मात्रा में मिलते है। जैसे कि 'संन्यासी' में मालती विश्वकान्त से प्रेम करती है। विश्वकान्त भी उससे प्रेम करता है। [illegible] [illegible]। लेकिन यह सब कुछ छोड़कर विश्वकान्त देशसेवा

करने गया है। फिर भी विश्वकान्त उस पर उतना ही अनुरक्त है जैसे की पहले था। परन्तु वह उसे पुराने रोमांटिक प्रेम को भूलकर कर्तव्य पथ पर चलते रहने की प्रेरणा देती हैं और उँचे आदर्श की प्राप्ति के लिए उसे भूल जाने के लिए कहती है। विश्वकान्त भी मालती के शब्दों से प्रभावित होकर संन्यास ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार के कई उदाहरण इन विवेच्य नाटकों में हैं।

निष्कर्ष यह कि मिश्रजी के विवेच्य नाटकों में दार्शनिकता से युक्त भाषा के दर्शन होते हैं। नाटक की भाषा में संक्षिप्त कसावट के प्रयास ने तो इसे दार्शनिकता की कोटि में पहुँचा दिया है। किसी भी भाषा में ऐसी दार्शनिकता का जन्म लेखक की प्रतिभा एवं परिपक्वता का परिचायक है। मिश्रजी के भाषा-कौशल का यह रूप अत्यंत सराहनीय है।

5.8.6 व्यंग्यपूर्ण भाषा का प्रयोग -

'सिन्दूर की होली', 'संन्यासी' नाटक में व्यंग्यपूर्ण भाषा को पर्याप्त स्थान मिला है। नाटककार ने अनेक स्थानों पर तीखी एवं व्यंग्य मर्मभेदी आलोचना के लिए तीखी एवं चुटीली भाषा का प्रयोग किया है। उन्होंने तत्कालीन समाज एवम् शासन पर सात्विक क्रोध प्रकट करने के लिए तीक्ष्ण, व्यंग्यप्रधान भाषा का प्रयोग किया है। व्यंग्यपूर्ण भाषा का प्रयोग मुख्य रुप से 'सिन्दूर की होली' और 'संन्यासी' में हुआ है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है -

मुरारीलाल ने आठ हजार रूपये के लिए अपने मित्र की हत्या की थी। वह रहस्य उन्होंने कई दिनों तक छिपाया था। लेकिन उनका लड़का मनोज जिसका उन्होंने पुत्रवत पालन किया था। लेकिन जब उसे समझता है कि उसके पिता का हत्यारा स्वयं मुरारीलाल है। तब यह जानकर उसकी बेटी चंद्रकला भी घर छोड़ने का निर्णय करती है। उसी समय मनोज बाँसुरी निकालकर ओठ पर रख देता है। तब मुरारीलाल उन्हें कहते हैं कि -

मुरारीलाल - (रुँधे कण्ठ से) तुम इस समय बाँसुरी बजाओगे ? इस समय ?

मनोजशंकर - बजा दूँ, आप लोगों को नींद आ जाय ।

मुरारीलाल - मेरा सर्वनाश हो गया और तुम व्यंग्य कर रहे हो?''[28]

इस प्रकार के कई व्यंग्यभरे संवाद दिखायी देते हैं।

5.8.7 ओजपूर्ण भाषा का प्रयोग -

विवेच्य नाटकों में पात्रों के स्वभाव और परिस्थितियों के अनुसार ओजपूर्ण भाषा-शैली का प्रयोग मिलता है। मिश्रजी ने अपनी भाषा में गतिशीलता लाने के लिए ऐसे छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग किया है, जिनमें त्वरा है, तीव्रता है, विलक्षणता है, गंभीरता है, लाक्षणिकता है और अतिव्यंजना की अद्भूत क्षमता है। यहाँ ओजपूर्ण भाषा एक उदाहरण द्रष्टव्य है - ''पट्टीदारी का झगड़ा है। उस दिन जो लड़का आप से मिलने आया था, जिसकी उम्र सत्रह अठराह साल के करीब थी, उसके बाप को मरे अभी साल भर हो रहा है। अब उस कमजोर और गरीब समझकर राय साहब उसका हक भी हड़प लेना चाहते है।''[29]

5.8.8 सीधी, सरल भाषा -

मिश्रजी की नाटकों की भाषा विषयानुरुप परिवर्तित होती गई है। भाषा के प्रवाह एवं सौंदर्य में पर्याप्त वृध्दि हुई है और साथ ही स्वाभाविकता की भी रक्षा हुई है। शब्दयोजना भी अत्यंत संयत और प्रभावपूर्ण है। भाषा को उन्होंने कही आंच नहीं आने दी है।

5.8.9 प्रभावशाली भाषा का प्रयोग -

मिश्रजी के नाटकों की भाषा का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि उसमें विविधता है, स्वाभाविकता है और विषयानुकूलता है। कहीं तत्कालीन समाज एवं मानव की प्रवृत्तियों पर सात्विक क्रोध प्रकट करने के लिए तीक्ष्ण व्यंग्यप्रधान भाषा का प्रयोग किया है। और कहीं-कहीं अपनी बात को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए अत्यंत सरल, सुबोध एवं बोलचाल की भाषा को

अपनाया है। इतना ही नहीं अपनी भाषा को अधिकाधिक प्रभावशाली बनाने के लिए मुहावरों एवं चुभते हुए वाक्यों से सुसज्जित किया है।

मिश्रजी की भाषा प्रौढ़, प्रांजल एवं प्रवाहमयी है। नाटकों के प्रवाहपूर्ण छोटे-छोटे वाक्य अर्थों की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हैं। इन नाटकों की भाषा वातावरण का सजीव चित्र अंकित करने में समर्थ है। वाक्ययोजना में संयम हैं; साथ ही शब्दों का चयन बड़ा मार्मिक एवं अर्थवान है। इसलिए मिश्रजी के नाटकों की भाषा अत्यंत प्रभावशाली बन पड़ी है।

5.9 शैली स्वरुप :-

नाटककार को अपने भाव एवं विचारों को व्यक्त करने के लिए सरस और सरल भाषाशैली का प्रयोग करना चाहिए। भाषा का प्रयोग तत्कालीन समाज के दृष्टिकोन से हो तो अधिक श्रेयस्कर होता है। परन्तु उसमें सरलता का होना अत्यंत आवश्यक है। भाषा शरीर है और भाव हृदय। श्रेष्ठ भाषा वही है जो मनुष्य के हृदयगत भाव को ठीक वैसी ही संवेदना के साथ दूसरे तक पहुँचा दे। इसलिए भाषा भाव के अनुकूल होनी चाहिए। जैसा विषय होता है वैसी ही भाषा बन जाती है। वैसे जितनी भाषा स्वाभाविक, पात्रानुकूल, और स्थिति के अनुरूप शैली होगी उतना ही उसका प्रभाव पड़ेगा। पात्र की शिक्षा, संस्कृति और मानसिक धरातल के अनुरूप उसकी भाषा होनी चाहिए।

डॉ. श्यामसुन्दरदास शैली के बारे में कहते हैं - ''किसी कवि या लेखक की शब्दयोजना, वाक्योंशों का प्रयोग, वाक्यों की बनावट और उसकी ध्वनि आदि का नाम ही शैली है।'' गुलाबराय के मतानुसार - ''शैली अभिव्यक्ति के उन गुणों को कहते है; जिन्हें लेखक या कवि अपने मन के प्रभाव को समान रूप से दूसरों तक पहुँचाने के लिए अपनाता है।''

शैली शिल्प नाटक के कथानक, चरित्र-चित्रण एवं भाषा आदि को एक ऐसे ढंग से प्रस्तुत करने का कार्य करता है, जिससे नाटकों में नवीनता एवं अभिनव प्रयोग उपस्थित हो सके।

शैली-शिल्प नाटककार की अभिव्यक्ति को नया रूप प्रदान करती है। इस प्रकार शैली रचना के बहिरंग तथा अंतरंग दोनों सौंदर्य पक्ष को उद्‌घाटित करने का प्रबल साधन है।

शैली का सम्बन्ध रचना के साथ-साथ रचनाकार से भी होता है। इसलिए रचनाकार के परिवेश, अनुभव, शिक्षा, संस्कार, रुचि आदि का भी उसके निर्माण में विशेष महत्त्व होता है। शैली में लेखक का व्यक्तित्त्व ही अंतनिर्हित रहता है। अत: शैली एक कलात्मक उपलब्धि है, उसे अर्जित करना पड़ता है।

डॉ. दुर्गाशंकर मिश्रजी के मतानुसार - "वास्तव में भावाभिव्यक्ति का माध्यम भाषा है और उस माध्यम के प्रयोग की रीति शैली है।"

शैली के द्वारा नाटककार अपनी कृति को अधिक आकर्षक और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है। नाटककार जिस ढंग से अपने विचार और भावनाओं की अभिव्यक्ति देता है, उसी को शैली कहते हैं।

5.10शैली के गुण :-

1. सरलता -

सरलता शैली का सर्वप्रथम गुण है। सरल शैली ही नाटक को सफल बनाती है।

2. रोचकता -

नाटक का विषय और कथा कितनी भी आकर्षक क्यों न हो यदि उसकी शैली में रोचकता न होगी, तो बहुत कम पाठकों में इतना धैर्य होगा कि वे इसका पठन कर सके।

3. प्रवाहपूर्णता -

जो शैली प्रवाह से पूर्ण होगी वही पाठकों को अपने रस में बहा ले जाने में समर्थ होगी। प्रवाहमयता का गुण उसमें सभी तत्त्वों के उचित संतुलन से आता है।

जिस प्रकार भाषा के अभाव में अभिव्यक्ति नहीं हो सकती, उसी प्रकार शैली के अभाव में नाटक नाटक नहीं हो सकता। नाटककार का व्यक्तित्व ही उसकी शैली है उसी के द्वारा हम नाटककार को पहचानते हैं।

5.11 विवेच्य नाटकों में विविध शैलीयों का प्रयोग :-

5.11.1 वर्णनात्मक शैली -

यह एक लेखन में प्रयुक्त होनेवाली प्रमुख शैली है। इस शैली के माध्यम से सफल चरित्रचित्रण भी किया जाता है। इस शैली में किसी भी दृश्य या पात्र का सरल और सीधे सादे ढंग से वर्णन किया जाता है; तथा यह शैली परंपरागत मानी जाती है। पात्रों की परिस्थितियों एवं उनके परिवेश के चित्रण द्वारा संपूर्णता का आभास दिलाने में यह शैली तब विशेष रुप से उपयोगी लगती है। बाह्य दृश्यों और घटनाओं को इस शैली में प्रस्तुत करके यथार्थ का सम्यक् बोध भी कराया जाता है। इसमें नाटककार तटस्थ रुप में कथा को विस्तार से लिख देता है। जो कुछ वह लिखना चाहता है उसे वर्णनात्मक शैली में लिखता है। इसमें नाटककार सृष्टा के रुप में आता है, स्वयं कोई पात्र नहीं होता इसलिए वह नाटक के प्रत्येक पात्र की भावनाओं की अभिव्यक्ति दे सकता है। मिश्रजीने विवेच्य नाटकों में इस शैली का प्रयोग बड़े अच्छे ढंग से किया है।

मिश्रजी के 'सिन्दूर की होली' नाटक का एक उदाहरण -

डिप्टी कलक्टर मुरारीलाल का बँगला। बँगले में सामने की ओर एक बड़ा कमरा है, जिसमें अँगरेजी ढंग के एक-दूसरे से लगे हुए सामने की ओर दरवाजें हैं। दरवाजे सभी खुले हुए हैं और कमरे के बीच में एक बड़ी मेज के चारों ओर लकड़ी की कुर्सिया रक्खी हैं। मेज पर एक अँगरेजी अखबार, एक तश्तरी में पान, इलायची और उसके पास ही गोल्डफ्लेक सिगरेट का डिब्बा और दियासलाई पड़ी है। दूसरी ओर की दीवाल में दो अलमारियाँ हैं, जिनमें मोटी-मोटी पुरानी किताबें रक्खी हैं। किसी की जिल्द उखड़ गयी है, किसी की जिल्द का कपड़ा सड़ गया है और गन्दी वफ्ती

देख पड़ती है। कमरे के सामने मेहराबदार गोसवारा है, जिसके खम्भों का सीमेन्ट कहीं-कहीं उखड़ गया है और भट्टी ईटें देख पड़ती हैं। गोसवारे में दीवाल के किनारे बांस की दो कुर्सिया रक्खी हैं। गोसवारे के दोनों ओर दो गोल कमरे हैं, जिनके एक-एक दरवाजे गोसवारे में हैं और एक-एक पीछे की ओर बड़े कमरे में। बड़े कमरे से बँगले के भीतरी भाग में जाने का रास्ता है।''[30]

मिश्रजी के 'संन्यासी' नाटक का एक उदाहरण -

मिश्रजी के किरणमयी का वर्णन करते हुए लिखा है कि - ''प्रोफेसर दीनानाथ का कमरा। उनकी स्त्री किरणमयी सज-धज कर शीशे के सामने खड़ी है। उसका सिरखुला है, वेणी पीठ की ओर लटक रही है, उसमें एक रूमाल बँधी है जिसमें हरे और पीले रंग के फूल बने है। हल्के सुनहले रंग की साड़ी, नीला कमरा। किरणमयी बार-बार अपना दाया हाथ अपने सिरपर फेर रही है। उसके दायें और मशहरी बिछी है। दूसरी ओर एक छोटी मेज और उसके अगल-बगल में चार आराम कुर्सिया रखी है।

प्रोफेसर दीनानाथ का प्रवेश - प्रोफेसर दीनानाथ के आधे से अधिक बाल पक चुके हैं। दाढ़ी मूँछ सब सफाई से बनी है। रेशमी कुर्ता, चोड़ी मोहरी का पायजामा, मखमली चट्टी। दीनानाथ उत्सुक नेत्रों से किरणमयी की ओर देखते हैं, वह भी घूमकर उनकी ओर देखती है।''[31]

इस प्रकार अनेक जगह पर मिश्रजी ने वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है। जिसके कारण एक सहजता, स्वाभाविकता नाटक में निर्माण हो जाती है।

5.11.2 विवरणात्मक या विश्लेषणात्मक शैली -

इस शैली के माध्यम से नाटककार कुछ ब्यौरे दे देता है जिनकी पाठकों के लिए आवश्यकता होती है। यहाँ भी नाटककार अत्यंत तटस्थ रहता है और विश्लेषण करता चला जाता है। इससे पाठकों की उन घटनाओं या पात्रों के चरित्र की जानकारी प्राप्त होती है।

'सिन्दूर की होली' नाटक के मनोरमा और चंद्रकला तथा मुरारीलाल के सौंदर्य का वर्णन भी विश्लेषणात्मक शैली का ही नमूना है। जैसे - ''मुरारीलाल की अवस्था इस समय प्राय: चालीस वर्ष की है। गोरा और स्वस्थ शरीर, आँखे छोटी, लेकिन चमकती हुई और घने काले बाल, जो पीछे की ओर घूम पड़े हैं। दाढ़ी मूँछ बनी हुई, कमीज, चौड़ी मुहरी का पाजामा और पंजाबी जूता पहने हैं। इस वेश में मुरारीलाल पूर्ण युवा मालूम हो रहे हैं।''[32]

इस प्रकार कभी पात्रों के व्यक्तित्त्व विश्लेषण के लिए तो कभी चरित्रगत गुणों को बताने के लिए नाटककार ने इस शैली का प्रयोग किया है।

5.11.3 पत्रात्मक शैली -

आधुनिक काल में कुछ ऐसे भी साहित्यकार रहे हैं जो पूरे के पूरे नाटक में पत्रशैली का प्रयोग करते हैं । पात्र के हृदय में होनेवाली हलचल तथा पात्रों के मन की गूढ़तम बातों को भी सहज रूप से प्रकट करने के लिए इस शैली का उपयोग होता है।

मिश्रजी ने अपने 'सिन्दूर की होली' नाटक में प्रत्यक्ष रूप से कोई पत्र नहीं लिखा गया है! इसमें एक-दो पत्र आने के केवल हमें संकेत मिलते हैं।

मिश्रजी ने अपने 'संन्यासी' नाटक में भी पत्र शैली का प्रयोग कहीं-कहीं किया है। एक जगह मालती ने विश्वकान्त को लिखा हुआ पत्र है -

प्रिय विश्व, अपना पता देकर तुमने बड़ी कृपा की। बड़े संकट में पड़ गयी हूँ। फाल्गुनी सुदी-पंचमी मेरे विवाह की तिथि है। मैं विवाह करुँगी ? नहीं । तो कैसी ? कोई रास्ता दिखा सकोगे?

तुम्हारी मालती।[33]

साथ ही विश्वकान्त ने जबाब रूप में लिखा हुआ पत्र,

प्रिय मालती,

तुम्हारे विवाह के समाचार से प्रसन्नता हुई। 'नहीं' और 'हाँ' से तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं। समाज की रुढ़ि तुम्हें माननी पड़ेगी। इसी में तुम्हारी भलाई है। विवाह के समय प्रसन्न रहना। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे। मै बाहर जा रहा हूँ। इस पते से पत्र न लिखना। पहुँचने पर नई जगह का पता लिख भेजूँगा।

तुम्हारा विश्व।[33]

इस प्रकार नाटक में जगह-जगह पत्र आने के भी संकेत मिलते हैं। इस तरह पत्रशैली का प्रयोग कथावस्तु की एकरसता को तोड़कर सुरुचि लाने में सक्षम बन पड़ा है।

5.11.4 काव्यात्मक शैली -

नाटक को अत्यन्त प्रभावपूर्ण बनाने के लिए काव्यात्मक शैली का प्रयोग किया जाता है। इससे नाटक में सरसता, सुन्दरता आ जाती है। मिश्रजी ने इस शैली का अधिक प्रयोग नहीं किया है। 'सिन्दूर की होली' नाटक में केवल मनोज द्वारा बासूँरी बजायी हुई दिखायी देती है। लेकिन 'संन्यासी' नाटक में इस शैली का प्रयोग काफी मात्रा में किया है। जैसे एक बार जब विश्वकान्त विमनस्क स्थिति में था तब उन्होंने पढ़ा है -

क्या कहते हो व्यर्थ लाभ क्या ?
गिन कर नभ के तारे ।
अरे ! अबोध अचल यह रजनी,
इनके मृदूल सहारे -
चलना होगा आज निकल कर,

कारागृह से अपने -

उस जगती को जहाँ जी उठेंगे,

चिर दिन के सपने।[34]

एक जगह किरणमयी गाती हुयी दिखायी देती है -

आंसुओं से मत खेल करो ।

जीवन की अभिसार निशा में

बरस रहे यौवन के नव घन,

फिर प्यासे होगें हम दोनों -

रीते घट न घरी।

आंसुओं से मत खेल करो ।

सूना हृदय, सो रही रजनी,

नभ के व्याकुल तारे -

चलते हैं जिस ओर चलूँ मैं

प्रियतम पीर हरो।

आंसुओं से मत खेल करो।[34]

इस प्रकार मिश्रजी ने नाटक में सहजता, प्रभावोत्पादकता आने के लिए कई जगह इस शैली का प्रयोग उन्होंने किया है।

5.11.5 नाटकीय शैली -

नाटककार के कथोपकथनों में नाटकीयता जब कोई नाटककार भर देता है तो नाटक रोचक, सहज, स्वाभाविक, सरस बन जाता है। नाट्यशैली की सार्थकता छोटे-छोटे एवं सहज स्वाभाविक संवादों के माध्यम से ही संभव है। इस शैली के माध्यम से रचनाकार अमूर्त भावों एवं

वस्तुओं को रुप और गति प्रदान करके उनमें तत्कालिकताका बोध कराता है। उनके 'संन्यासी' नाटक का एक उदाहरण -

मालती - मैंने आपको वह पत्र दिया था?

रमाशंकर - तुमने दिया या किसी ने दिया। मैंने अपना कर्तव्य तुमको गिरने से बचा दिया।

मालती - बचा लिया या गिरा दिया ? अब लोग मुझे क्या समझेंगे ?

(साँस रोककर एकटक देखती है।)

रमाशंकर - तुम्हीं सोचो ?

मालती - तो क्या आप चाहते हैं कि मैं भी अब लोगों से कह दूँ कि आप मेरे साथ कोर्टशिप कर रहे थे ..... उसी क्रोध में आपने ....

रमाशंकर - प्रमाण ......?''[35]

इस प्रकार अन्य भी कई नाटकीय संवाद मिश्रजी के विवेच्य नाटकों में देखने को मिलते है। नाट्यशैली के सफल प्रयोग द्वारा मिश्रजी ने आंतरिक भावनाओं को सफल अभिव्यक्ति दी है।

5.11.6 दृश्य शैली -

यथार्थ जीवन के चित्रण एवं पात्रों के मनोविश्लेषण में यह शैली अनुपयुक्त सिध्द हुई। उसके पर्याय स्वरुप दृश्य-विधान शैली का प्रयोग हुआ। इस शैली के द्वारा नाटककार विराट दृश्यों का चित्रण शब्दों के माध्यम से संक्षेप में प्रस्तुत करता है। पात्रों के कार्य घटनाएँ तथा जीवन खण्डों के दृश्य इस प्रकार प्रस्तुत किय जाते हैं कि पाठक उन प्रसंगों के साथ तादात्म्य प्राप्त करते हैं। इस शैली में छोटे-छोटे दृश्यों के माध्यम से वातावरण की पृष्ठभूमि के साथ-साथ पात्रों की रुपाकृति एवं कार्यों का सजीव चित्रण खींचा जाता है।

'सिन्दूर की होली' का एक उदाहरण -

माहिरअली का प्रस्थान। मुरारीलाल दीवाल की आलमारी खोल कर एक पुस्तक निकालते हैं। पुस्तक मेज पर रख उसके पन्ने इधर-उधर करने लगते हैं। कई पन्ने इधर-उधर उलट-पुलटकर पुस्तक को खुली मेज पर छोड़कर आलमारी से दूसरी पुस्तक निकालते हैं, उसके पन्ने भी जल्दी-जल्दी उलट कर देखने लगते हैं। थोड़ी देर तक मेज के किनारे खड़े होकर जैसे कुछ पढ़ते हैं, कभी-कभी अंगरेजी के अधूरे शब्द उनके मुँह से निकल पड़ते हैं। मुरारीलाल क्षण भर के लिए ऊपर छत की ओर देखते हैं। दूसरे ही क्षण पुस्तक उठाकर कमरे में फर्श पर फेंक देते हैं। पुस्तक के गिरने के साथ ही घॉय की आवाज होती है, और वह कमरे के बाहर होकर गोसवारे से नीचे उतरकर, बायीं ओर मुड़कर, आड़ में हो जाते हैं।''[36]

इससे यह पढ़ने के बाद उस परिस्थिति के साथ एकरूप हो जाते है और वह हमारे आँखों के सामने ही हो रहा है ऐसा हमें लगता है।

'संन्यासी' नाटक का उदाहरण -

''कॉलेज का एक कमरा - प्रोफेसर रमाशंकर मेज के समीप कुर्सी पर बैठे हैं। उनके ठीक पीछे जँगला है। उसके भीतर से पीछे की सड़क देख पड़ती है। कमरे में तीन ओर लड़के बैठे हैं। प्रोफेसर रमाशंकर अपने कोट की ओर देखते हुए उठते हैं, टाई की क्लिप ठीक कर पतलूनमें हात डालते हुए ।''[37]

इस प्रकार मिश्रजी ने इस शैली का प्रयोग कुशलतापूर्वक और सुन्दर ढंग से किया है। जिससे पात्रों के व्यक्तित्त्व को चित्रात्मक अभिव्यक्ति मिली है।

5.11.7 दिवास्वप्न शैली -

इस शैली का प्रयोग पात्रों के अचेतन में स्थित भावनाओं एवं इच्छाओं की अभिव्यक्ति के लिए होता है। मानसिक विकृति ग्रस्त पात्रों को जागृत अवस्था में भी स्वप्नवत भाँति होती है जो उन्हें यथार्थ लगती है।

'संन्यासी' नाटक का एक उदाहरण -

''विश्व बाबू के साथ रहकर देश-सेवा करुँगा। उनके साथ दूसरे देशों की सैर करुँगा। कब तक इस जेल खाने में पड़ा रहूँगा... । मिडिल पास हूँ .... आठवें दर्जे तक अंगरेजी भी पढ़ी है ... प्रेस में नौकरी कर लूँगा।''[39]

5.11.8 पूर्व दिप्ती शैली -

इसे अंग्रेजी में 'फ्लैश बैक' शैली कहा जाता है। इसमें पात्रों की अतीत की घटनाएँ याद आती है और ज्यों का त्यों प्रस्तुत किया जाता है। 'सिन्दूर की होली' नाटक का उदाहरण -

''वह रात .... दस वर्ष बीत ग्ये। आपने अपने मित्र को भाँग पिलाकर नाव से नदी में ठेल दिया था। केवल आठ रूपया पचा लेने के लिए। आप उस समय भी डिप्टी कलक्टर थे और माहिर आपका तब भी मुंशी था। उसी रूपये से आपने यह मोटार ली थी और एक बंगला गाँव पर बनवाया था।''[40]

साथही मिश्रजी का दूसरा एक नाटक 'संन्यासी' का उदाहरण -

''इसलिये कि मेरे नाटकीय प्रेम के कारण तुम अपने कर्तव्य से गिर रहे हो। तब पिताजी ने कहा था तभी तुमने मुझसे विवाह क्यों नहीं किया। हम दोनों के जीवन का सबसे सुन्दर समय था .... जब हम दोनों एक दूसरे के हृदय से लगे रहना चाहते थे .... जब मेरी आराधना तुम करते थे और तुम्हारी मैं .... जाने दो, यह तो मानी हुई बात है कि तुमने मुझे प्रेम किया था ....

संदर्भ सूची

1. प्रताप नारायण टंडन, उपन्यास कला, पृ.26

2. डॉ. गोविन्द चातक, नाट्यभाषा, पृ.10

3. डॉ. रामजन्य शर्मा, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों का विकास, पृ.69

4. डॉ. शान्ति मलिक, हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का विकास, पृ.110

5. लक्ष्मीनारायण मिश्र, 'सिन्दूर की होली', पृ.3, 3, 3, 5, 5, 7, 7, 12, 14, 15, 15, 19, 20, 22, 23, 23, 24, 24, 24, 25, 25, 26, 27, 28, 29, 30, 30, 32, 32, 34, 34, 34, 34, 35, 39, 40, 41, 43, 43, 43, 44, 44, 45, 45, 45, 46, 46, 46, 47, 48, 49, 49, 49, 49, 50, 51, 52, 52, 52, 52, 52, 54, 55, 57, 57, 58, 58, 59, 60, 60, 63, 64, 64, 64, 65, 66, 66, 68, 68, 69, 70, 70, 71, 71, 72, 72, 73, 74, 74, 75, 75, 77, 77, 77, 80, 81, 87, 91, 98, 98, 101, 101, 102, 103, 110, 113, 113, 114, 116, 117, 117, 118, 118, 121, 121.

6. लक्ष्मीनारायण मिश्र, 'संन्यासी', पृ. 19, 20, 39, 26, 27, 29, 31, 32, 39, 39, 40, 40, 40, 42, 43, 45, 46, 46, 50, 57, 57, 57, 58, 62, 63, 63, 66, 66, 66, 66, 69, 70, 71, 72, 73, 76, 77, 77, 78, 79, 80, 80, 82, 82, 86, 88, 88, 93, 95, 96, 98, 103, 110, 110, 110, 115, 118, 119, 119, 120, 121, 121, 121, 121, 123, 124, 124, 126, 126, 127, 132, 143, 148, 154, 154, 165, 169, 169, 169, 171, 172, 173, 173, 173, 174, 175, 178, 178, 182, 183, 183

7. लक्ष्मीनारायण मिश्र, 'सिन्दूर की होली', पृ. 3, 3, 4, 4, 5, 5, 6, 6, 7, 11, 12, 13, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 20, 22, 23, 23, 23, 24, 25, 26, 27, 27, 28, 29, 39, 43, 54, 71, 72, 72, 78, 80, 86, 91, 91, 93, 94, 94, 96, 102, 105, 109, 113, 115, 117.
8. लक्ष्मीनारायण मिश्र 'संन्यासी', पृ. 19, 21, 23, 25, 26, 26, 26, 26, 44, 44, 47, 50, 54, 56, 76, 87, 95, 96, 97, 106, 115, 116, 116, 120, 129, 129, 131, 133, 133, 134, 134, 134, 134, 134, 136, 137, 140, 143, 147, 148, 149, 152, 157, 157, 158, 165, 168, 170
9. लक्ष्मीनारायण मिश्र 'सिन्दूर की होली', पृ. 3, 3, 3, 3, 5, 7, 9, 10, 11, 12, 13, 13, 13, 14, 14, 15, 19, 20, 23, 23, 25, 25, 26, 26, 27, 29, 32, 41, 42, 43, 47, 48, 54, 57, 70, 73, 91, 94, 96, 106
10. लक्ष्मीनारयण मिश्र 'संन्यासी', पृ. 26, 38, 39, 48, 43, 72, 76, 76, 81, 84, 92, 92, 93, 95, 99, 101, 101, 103, 106, 106, 107, 112, 126, 127, 127, 127, 130, 132, 133, 134, 134, 137, 144, 144, 147, 148, 158, 159, 167, 170, 173, 173, 179.
11. लक्ष्मीनारायण मिश्र 'सिन्दूर की होली', पृ. 3, 4, 20, 26, 26, 43, 48
12. लक्ष्मीनारायण मिश्र 'संन्यासी', पृ. 21, 23, 31, 37, 45, 58, 60, 63, 68, 73, 73, 73, 73, 73, 77, 77, 77, 78, 79, 82, 84, 84, 91, 92, 93, 95, 97, 98, 102, 112, 126, 158, 165, 166
13 लक्ष्मीनारायण मिश्र, सिन्दूर की होली, पृ. 3, 3,3, 7, 7, 9, 11, 13, 15, 17, 28, 30, 33, 40, 42, 52, 57, 57, 63, 65, 77, 80, 81, 95,108

14. लक्ष्मीनारायण मिश्र, 'संन्यासी', पृ. 19, 19, 20, 21, 21, 22, 23, 26, 26, 26, 27, 27, 28, 29, 29, 29, 30, 31, 32, 33, 33, 34, 34, 34, 34, 37, 39, 41, 41, 43, 43, 45, 46, 53, 54, 54, 54, 56, 56, 56, 58, 61,62, 63, 72, 81, 98, 98, 100, 107, 108, 111, 119, 124, 150, 153, 156, 159, 159, 168, 174, 178
15. लक्ष्मीनारायण मिश्र, सिन्दूर की होली, पृ. 39, 91
16. लक्ष्मीनारायण मिश्र, संन्यासी, पृ. 39, 52, 53, 73
17. लक्ष्मीनारायण मिश्र, सिन्दूर की होली, पृ. 48
18. लक्ष्मीनारायण मिश्र, संन्यासी, पृ. 114, 127
19. लक्ष्मीनारायण मिश्र, सिन्दूर की होली, पृ. 113. 114
20. लक्ष्मीनारायण मिश्र, संन्यासी, पृ. 115, 178
21. लक्ष्मीनारायण मिश्र, सिन्दूर की होली, पृ. 24, 113, 13
22. लक्ष्मीनारायण मिश्र, संन्यासी, पृ. 51
23. लक्ष्मीनारायण मिश्र, सिन्दूर की होली, पृ.18,18,29,29,56,78,90,90, 91, 91, 91, 104, 105, 120
24. लक्ष्मीनारायण मिश्र, संन्यासी, पृ. 23, 27, 27, 35, 35, 37, 40, 41, 41, 46, 56, 68, 81, 93, 137, 140
25. लक्ष्मीनारायण मिश्र, सिन्दूर की होली, पृ. 35
26. लक्ष्मीनारायण मिश्र, सिन्दूर की होली, पृ. 6, 8, 8, 27
27. लक्ष्मीनारायण मिश्र, संन्यासी, पृ. 35, 52, 81
28. लक्ष्मीनारायण मिश्र, सिन्दूर की होली, पृ.120,121
29. लक्ष्मीनारायण मिश्र, सिन्दूर की होली, पृ.4, 5,

30. लक्ष्मीनारायण मिश्र, सिन्दूरको होली, पृ.3

31. लक्ष्मीनारायण मिश्र, संन्यासी, पृ.44

32. लक्ष्मीनारायण मिश्र, सिन्दूरकी होली, पृ.7

33. लक्ष्मीनारायण मिश्र, संन्यासी, पृ. 141, 143

34. लक्ष्मीनारायण मिश्र, संन्यासी, पृ.39, 46

35. लक्ष्मीनारायण मिश्र, संन्यासी, पृ.154

36. लक्ष्मीनारायण मिश्र, सिन्दूरकी होली, पृ.29

37. लक्ष्मीनारायण मिश्र, संन्यासी, पृ.19

38. लक्ष्मीनारायण मिश्र, संन्यासी, पृ.76

39. लक्ष्मीनारायण मिश्र, सिन्दूरकी होली, पृ.117

40. लक्ष्मीनारायण मिश्र, संन्यासी, पृ.178